(दशमस्कन्धार्थ निरोधलीला)

शेष–हृदयमें सहस्रलक्ष्मी–लीलाका लहराता सागर।
नमन वहीं उस कलानिधिको जो है नटवरनागर।।
स्कन्धदशमके चार चार और चार तीन प्रकरण हैं।
छह अध्याय गुणोंके यों पांच रीतिके प्रभुविहरण हैं।।

(स्कन्धार्थ)

सदा दशविधलीलाविहारी परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्णकी भक्तिके निरूपक नवमस्कन्धके बाद, अब दशमस्कन्धमें उनकी निरोधलीलाका निरूपण अभिप्रेत है. ‘निरोध’ पद ‘नि’=भलीभांति अर्थवाले उपसर्गको ‘रोध’=रोकना अर्थवाली क्रियापदके साथ जोड़नेपर व्युत्पन्न होता है. एतदर्थ स्वाभाविकतया कुछ अपेक्षा प्रकट हो जाती हैं यथा :

१-आकांक्षा किसे भलीभांति रोकना ? २-आकांक्षा किसमें या कहां भलीभांति रोकना ? ३-आकांक्षा कैसे या किस भलीभांतिके उपाय या साधन से रोकना ? ४-आकांक्षा क्यों अर्थात् किस भलीभांतिके प्रयोजनवश रोकना ?

१-पूर्ति तदनुसार प्रस्तुत सन्दर्भमें ‘निरोध’ पद नवमस्कन्धमें प्रतिपाद्य भक्ति जिनके भीतर सिद्ध हो गयी हो उन्हें भलीभांति रोकनेके तात्पर्यवश प्रयुक्त हुवा है. २-पूर्ति अपने परमानन्दात्मक स्वरूप गुण और लीलाओं द्वारा अपने भक्तोंके भीतर पनपनेवाली पारमात्मिक स्वरूपासक्ति गुणासक्ति अथवा लीलासक्ति में जीवात्माओंको भलीभांति निरुद्ध करना. ३-पूर्ति अपनी उन–उन मनोहारिणी साक्षात् लीलाओंद्वारा अर्थात् पहले स्वयं अपने–आपको भक्तोंके बीच भलीभांति निरुद्ध बना कर ४-पूर्ति सालोक्यादि मुक्ति तथा अन्ततः स्वरूपभावापत्ति या आश्रयभावापत्ति प्रदान करनेके भलीभांतिके प्रयोजनवशात्.

अतएव इस दशमस्कन्धके, ३ अध्याय(१२-१४) प्रक्षिप्त होनेके कारण, ८७ अध्यायोंवाले समग्र स्कन्धमें उसकी एकार्थता जीवात्माको प्रपंचविस्मृति करा कर भूतलपर अवतीर्ण परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य स्वरूप गुण और लीलाओं में जीवात्माओंको अनन्यासक्त बना देनेवाली

कथाके रूपमें निरूपणीय है.

''दसवें आश्रय तत्त्वके विशुद्धबोधार्थ नौ स्कन्ध भागवतपुराणमें योजित हुवे हैं... दशमस्कन्धमें प्रतिपाद्य निरोध इस आत्माका अपनी शक्तिओंके साथ अनुशयन है. आभास और निरोध जिसके कारण निर्धारित होते हैं, ऐसे उस आश्रयतत्त्वको 'परब्रह्म-परमात्मा' कहा जाता है. जो पुरुष आध्यात्मिक है वही पुरुष आधिदैविक भी है. फिरभी एक होनेपर भी द्विधा अवभासित पुरुषोंका परस्पर विच्छेद तृतीय पुरुष, जो आधिभौतिक है, वह करता है. दोनोंमें से किसीभी एकके न होनेपर दूसरा भी जब उपलब्ध न हो पाता हो, तबभी तीनों पुरुषोंको जो जानता हो उसे ''स्वाश्रयाश्रय आत्मा'' कहा गया है''.
(भाग.पुरा.२।१०।२-९)

लक्षणरूपा इन नौ लीलाओंके निरूपण, लक्ष्यरूप आश्रयतत्त्वके निरूपण, विशेषरूपेण मध्यपाती निरोधके निरूपण, इसी तरह आधिभौतिक अध्यात्मिक और आधिदैविक यों तीन तरहके पुरुषोंके निरूपणोंके भी आधारपर इतना तो स्पष्ट ही है कि आरम्भके उपक्रमरूप प्रथम-द्वितीय दो स्कन्धोंको छोड़नेके बाद सर्गलीलाके निरूपक तृतीय स्कन्धसे आरम्भ कर नवम स्कन्ध पर्यन्त सात स्कन्धोंके अर्थ सरलतया निर्धारित हो जाते हैं. परन्तु दशमसे द्वादश स्कन्ध पर्यन्त तीन स्कन्धोंमें से कौनसे स्कन्धमें लक्ष्यरूप आश्रय तत्त्वका प्रतिपादन अभिप्रेत मानना ? यह विचारणीय मुद्दा है. क्योंकि उसी आधारपर अवशिष्ट दो स्कन्धोंमें लक्षणतया अभिप्रेत दो अवशिष्ट लीलाओंका निरूपण अंगीकार करना पड़ेगा. सो इन तीन स्कन्धोंमें से किसी एक स्कन्धमें, चाहे उसे ८७ अध्यायोंके महाकलेवरवाले दशम स्कन्धके प्रतिपाद्यके रूपमें लें; अथवा, ३१ और १३ अध्यायोंके अल्पतर और अल्पतम कलेवरवाले ग्यारहवें या बारहवें स्कन्धके प्रतिपाद्यके रूपमें लें, लक्ष्यस्वरूपका निरूपण कहीं तो स्वीकारना ही पड़ेगा.

एक यह और बात है कि श्रीकृष्णचरित्रार्थ अपनाये गये असाधारण कलेवरविस्तारको लक्ष्यबाह्य रखें तब भी श्रीकृष्णको यदि भागवतमें प्रमुख प्रतिपाद्य नहीं मानते तो बड़ी असमंजसता प्रकट होती है. क्योंकि सभी स्कन्धोंमें अपने अवतारकालसे पूर्व भी किसी न किसी रूपमें श्रीकृष्णका निरूपण जो मिलता है, वह श्रीकृष्णको भागवतपुराणमें प्रमुख प्रतिपाद्य न माननेपर असंगत हो जायेगा.

ऐसी स्थितिमें श्रीकृष्णकी प्राकट्यलीला, बाललीला, पौगंडलीला, किशोरलीला तथा प्रौढ़लीला आदि लीलाओंका वर्णन तो दशम स्कन्धमें ही उपलब्ध होता होनेसे, इसी स्कन्धको लक्ष्यरूप आश्रयके प्रतिपादनपरक नहीं स्वीकारते हैं तो, इस भागवतपुराणमें श्रीकृष्णका परब्रह्म परमात्मा भगवान् होना भी सन्देहास्पद हो जाता सा लगता है.

अतएव श्रीश्रीधरस्वामी आदि क्रमप्राप्त निरोधलीलाका प्रतिपादन इस दशम स्कन्धमें अस्वीकार कर

‘‘विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितं ‘श्रीकृष्णा’ख्यं परं धाम जगद्धाम नमाम तद् दशमे दशमं लक्ष्यम् आश्रिताश्रयविग्रहम्’’ (भाग.श्रीध.१०।१।१) ऐसे प्रतिपादनद्वारा लक्ष्यरूप आश्रयका स्वरूप यहां अभिप्रेत मानते हैं.

जबकि ‘हरिलीला’ नामक ग्रन्थकर्ता श्रीबोपदेव : **‘‘निरोधो दशमस्कन्धे नवत्यध्याये ईरितो ‘निरोधो’ नाम सृष्टानां संहारः स चतुर्विधः १नैमित्तिकः २प्राकृतिको ३ब्रह्मणो अन्ते दिनायुषोः ४नित्यः... नैमित्तिको निरोधो अन्यो, धर्मग्लानिनिमित्तको ‘भूमिभारावतारा’ख्यो यदर्थं जन्म मापतेः, सएष दशमे प्रोक्तो, मुक्तिः एकादशे ततः, त्रयो अन्ये द्वादशे शुद्धं निरूपयितुम् आश्रयम्’’** (हरिली.१०।१-४) ऐसे प्रतिपादनद्वारा क्रमकी प्रधानता स्वीकार कर चतुर्विध प्रलयोमें से नैमित्तिक प्रलयके एक प्रकारको दशमस्कन्धके अर्थतया लेना चाहते हैं. इसी तरह आत्यन्तिक प्रलय, अर्थात् मुक्तिको, एकादशस्कन्धके अर्थतया लेना चाहते हैं. दूसरे प्रकारके नैमित्तिकप्रलय, प्राकृतिकप्रलय और नित्यप्रलय को द्वादशस्कन्धके अर्थतया लेना चाहते हैं.

इस तरह देखा जा सकता है कि इन व्याख्याकारोंके मनमें एक दुविधा खटकती सी लग रही है कि दशविध लीलाओंके, जो अर्थ स्वयं भागवतद्वितीय स्कन्धमें दिये गये हैं, उन्हें प्रधान मानना; या, स्कन्धोंके क्रम जो दरसाये गये हैं, उन्हें यथाक्रम स्वीकारना ? इसे दूर करनेको इन व्याख्याकारोंमें से श्रीश्रीधर स्वामीने द्वितीय स्कन्धके वचनमें दिये गये तत्तद् लीलाओंके अर्थको प्रधान मान कर क्रमप्राप्त निरोधको छोड़ कर लक्ष्यरूप आश्रयका प्रतिपादन यहां प्रधान या प्रमुख माना है. श्रीबोपदेव, परन्तु, क्रमको प्रधान मान कर दशमस्कन्धकी निरोधप्रतिपादकताका त्याग किये बिना स्वयं ‘निरोध’’पदके लोकप्रचलित अर्थ प्रलय और उसके चार प्रकारोंमें से एक नैमित्तिकप्रलय रूपी अर्थको यहां, और दूसरे आत्यन्तिकप्रलय रूपी अर्थको ग्यारहवें स्कन्धमें; और शेष तीनों अर्थोंको बारहवें स्कन्धमें स्वीकारते हैं.

इस असमंजसताका स्पष्टीकरण आरम्भमें ही हो जाना आवश्यक लगता है. तदनुसार :-

भागवतके तृतीय स्कन्धमें ब्रह्माजीद्वारा की गयी भगवत्स्तुतिमें भगवान्के स्वरूपकी विवेचना, सृष्टिके जन्मादिकी विवेचना और उसमें भगवल्लीलावतारोंकी विवेचनामें कई बातें अतीव महत्त्वपूर्ण उपलब्ध होती हैं :

‘‘१ज्ञातोऽसि मे अद्य सुचिराद्, ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिर्, इति अवद्यम्. न अन्यत् त्वद् अस्ति, भगवन् !, अपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्, यद् उरुः विभासि... २त्वं भावयोग-परिभावित-हृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु, नाथ !, पुंसां यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय. ३न अतिप्रसीदति तथा उपचितोपचारैः आराधितः सुरगणैः हृदि

बद्धकामैः यत् सर्वभूतदयया असदलभ्यया एको नानाजनेषु अवहितः सुहृदन्तरात्मा. [४]पुंसाम् अतो विविधकर्मभिः अध्वराद्यैः दानेन च उग्रतपसा व्रतचर्यया च आराधनं भगवतः तव सत्क्रियार्थो धर्मो अर्पितः कर्हिचिद् ध्रियते न यत्र. [५]शश्वत् स्वरूपम् असहैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय ते नमः इदं चक्रम ईश्वराय''.
(भाग.पुरा.३।९।१-१४)

ब्रह्माजी द्वारा की गयी इस स्तुतिके अन्तर्गत कहे गये भगवन्निरूपणके अवलोकन करनेपर कुछ बातें पर्याप्तरूपेण स्पष्ट हो जाती हैं. यथा : [१]स्वयं ब्रह्माजीको भी भगवान्के यथार्थ स्वरूपको पहचाननेमें कुछ न कुछ विलम्ब तो होता ही है तो अन्य देहधारियोंकी इस बारेमें चर्चा क्या करनी ! क्योंकि मूलरूपमें भगवान्में ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञानोपकरण-ज्ञाताके प्रभेदोंका विकल्प होता नहीं है. ये प्रभेद जब भगवान् अपनी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके द्वारा प्रकट करते हैं, तब मूलरूप इन्हीं प्रभेदोंमें अन्तर्गूढ़ बन जाता होनेसे, अनुभूतिगोचर नहीं हो पाता. अतः जो रूप प्रकट होते हैं वे बुद्धिमें मोह प्रकट करनेवाले बन जाते हैं. अतः ज्ञेय-आदिके प्रभेदवशात् प्रकट होते भगवान्के रूप शुद्धरूप या मूलरूप न हों तो; और, भगवत्स्वरूपके यथार्थ बोधके बिना उद्धार ही सम्भव न हो तो, स्वयं भगवान्की मुक्तिलीला भी सार्थक कैसे हो पायेगी ? क्योंकि मुक्ति-मुक्त्युपाय-मोचकेश्वर-मुक्तात्माके प्रभेद बिना मुक्तिलीला भी शक्य न होनेसे हृदय शंकाकुल हो जाता है.

तथ्य, परन्तु, इसमें यही है कि [२]भगवान्के लीलार्थ परिगृहीत रूपोंमें भगवान्का यथार्थ गृहीत नहीं हो पाता, यह तो प्राकृत देहधारियोंकी अक्षमताकी कथा है. इस न्यूनताका आरोप, परन्तु, भगवान्के स्वयं मूलरूपपर या अवतीर्णरूपपर भी लगाया नहीं जा सकता ! क्योंकि शास्त्रतः भगवान्के मूलरूप एवं अवतीर्णरूप का भी यथार्थबोध शक्य है ही. अतः ऐसे यथार्थबोधके बाद प्रकट होती भगवत्प्रीतिद्वारा, अर्थात् अपनी श्रद्धा रुचि प्रेम आसक्ति अनन्यासक्तिरूप या व्यसनरूप भावयोगके द्वारा भगवान्के स्वरूपकी जब कोई भक्त जो भी परिकल्पना या परिभावना करने लगता है, तब उसके समक्ष या हृदयमें जो भी भगवान्का स्वरूप प्रकट होता है, उसे प्रकट करने स्वयं भगवान् सर्वथा-सर्वदा समर्थ हैं ही. इस भावयोगद्वारा प्रादुभार्वित भगवत्स्वरूपमें भगवान्का आनन्दात्मक स्वरूपानुपाती अतिशय प्रसाद भी प्रकट होता है. अन्यथा समर्थ-दयालु होनेके कारण अपने सामर्थ्यानुपाती स्वरूप या प्रसाद को भी भगवान् प्रकट कर ही सकते हैं. अतः निष्काम भावयोगद्वारा परिभावित भगवत्स्वरूप और तदनुसारी भगवत्कृपा सर्व आपत्तियोंका समाधान प्रस्तुत कर देती हैं. [३]सृष्टिके कण-कणमें और प्राणिमात्रमें भी विविध नाम-रूप-कर्मोकी लीलामें विहरनेवाले भगवान् सर्वोपादानतया सर्वान्तर्यामितया एवं सर्वरूपतया बिराजमान तो रहते ही हैं, तबभी सृष्टिके किसी विशेष नाम-रूप-कर्मके प्रति अपने क्षुद्र राग/द्वेषसे प्रेरित हो कर जब कोई असत्पुरुष बड़े तामझामके साथ भगवान्की सकाम पूजा या अर्चना करता है, तब उसकी क्षुद्रकामनाओंको भगवान् पूर्ण नहीं करते, ऐसा भी नहीं. स्वयंकी ऐसी आराधनामें, परन्तु, भगवत्कृपा किसी और ही तरहकी अवरता ली हुयी

होती है. अतः आवश्यकता यही है कि मानव अपने [४]विविध लौकिक या शास्त्रीय कर्मोंको या तो भगवदाराधनाके रूपमें सम्पन्न करे अथवा तो भगवदाराधना भलीभांति निभ पाये ऐसे शुद्ध प्रयोजनवश उनका अनुष्ठान करे. तभी धर्माचरण भी क्षरणशील नहीं रह जाता. अन्यथा तो धर्माचरण भी नश्वर हो सकता है. यह कथा तो दूसरी ही है कि मर्त्य प्राणी तो शाश्वत धर्मोंका आचरण भी नश्वर प्रयोजनोंको पूर्ण करनेके लिये ही अपनाता है ! तब [५]भगवान्के भेद-मोहातीत यथार्थ स्वरूपका भान ऐसे प्राणीके भीतर कैसे टिक सकता है ? जबकि भगवान् तो इस सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलय की लीला भी स्वयंके साथ स्वयंके ही एक रासके रूपमें ही प्रकट करते हैं !

क्योंकि सृष्टिकी सारी लीला भगवान् स्वयंके साथ एक रासलीलाके रूपमें करते हैं, ऐसी सृष्टिमें सर्वजनगोचरतया स्वयं भी कभी अवतीर्ण हो कर कोई अवतारलीला भगवान् करते हों तो, उसका प्रयोजन केवल धर्मस्थापन असुरसंहार साधुपरित्राण या दुष्कर्मोपशमन जितना अल्पतर हो नहीं सकता. क्योंकि ये सारे कार्य तो सृष्टिमें प्रकट हुवे बिना, सृष्टिनिर्माता होनेके कारण, संकल्पमात्रसे भगवान् प्रकट कर सकते हैं. अतः स्वयं भगवान् भी जब ऐसी दुहाई देते हों तो उसे हमें अपना आदर्श समझानेकी उनकी लीला माननी चाहिये. भक्तजनोंको तो उनके भावोंद्वारा परिभावित स्वरूपकी दिव्यानुभूति प्रदान करनेके प्रयोजनवश ही भगवान् अपना लीलाविग्रह प्रकट करते हैं.

अतएव भागवतके प्रथमस्कन्धमें कुन्ती द्वारा की गयी श्रीकृष्णकी स्तुतिमें भी अवतारप्रयोजनकी मीमांसा यों उपलब्ध होती है :

‘‘[१]नमस्ये [क]पुरुषन्तु आद्यम् [ख]ईश्वरं [ग]प्रकृतेः परम् [घ]अलक्ष्यं सर्वभूतानाम् [ङ]अन्तर्बहिरवस्थितं [च]मायाजवनिकाछन्नम् [छ]अज्ञाधोक्षजम् [ज]अव्ययं [२]न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा. तथा परमहंसानां मुनीनाम् अमलात्मनां भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः !... [३]न वेद कश्चिद् , भगवन् !, चिकीर्षितं तव ईहमानस्य नृणां विडम्बनं, न यस्य कश्चिद् दयितो अस्ति कर्हिचिद् , द्वेष्यः च, यस्मिन् विषमा मतिः नृणाम्. [४]जन्म कर्म च विश्वात्मन् ! अजस्य अकर्तुः आत्मनः तिर्यङ्नृषिषु यादःसु तद् अत्यन्तविडम्बनम्... [५]केचिद् आहुः [अ]अजं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये यदोः प्रियस्य अन्ववाये... अपरे [आ]वसुदेवस्य देवक्यां याचितो अभ्यगाद् अजः त्वम् अस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषां, [इ]भारावतरणाय अन्ये भुवो नावइव उदधौ सीदत्याः भूरिभारेण जातो हि आत्मभुवा अर्थितः. [ई]भवे अस्मिन् क्लिश्यमानानाम् अविद्याकामकर्मभिः श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन् इति केचन’’.
(भाग.पुरा.१।८।१८-३५).

इस कुन्तीस्तुतिमें भगवान्को मूलरूपका वर्णन [१]आद्यपुरुष ईश्वर प्रकृतिसे पर अलक्ष्य प्राणिमात्रके भीतर और बाहर दोनों जगह मायाके आवरणसे आवृत हो कर अवस्थित अज्ञजनोंकी इन्द्रियोंसे अगोचर अव्यय होनेके रूपमें दरसाया गया है. भगवान्के भूतलपर अवतीर्ण रूप हो जाने मात्रसे

भगवान्का ऐसा स्वरूप निरस्त नहीं हो जाता परन्तु [२]कोई कुशल अभिनेता अपने कायिक वाचिक और वेषभूषा आदिके आहार्य अभिनय करते समय पहचाना नहीं जा सकता ऐसे भगवान्के भी भूतलपर अवतीर्ण होनेपर उन्हें साधारण जन केवल पहचान नहीं पाते. क्योंकि भगवान् तो विषयासक्तिसे रहित विरक्त भगवच्चिन्तनमननपरायण निर्मलमतिवाले पुरुषोंके भीतर भक्तियोग प्रकट करने ही अपना लीलास्वरूप प्रकट करते हैं. [३]जैसे विषममतिवाले साधारणजनोंके लिये कोई द्वेष्य होता है तो कोई प्रिय, भगवान्के लिये, परन्तु, कोई भी द्वेष्य या प्रिय नहीं होता. फिरभी मनुष्यके रूपमें प्रकट हो कर भगवान् मनुष्य जैसा बरताव लीलया प्रकट करते हैं. ऐसा तो नहीं कि भगवान् केवल मानुष रूप ही धारण कर अवतीर्ण होते हों. भगवान् तो [४]पशु-पक्षी मनुष्य ऋषि जलचर आदि अनेक रूपोंमें अवतीर्ण होते हैं; और जब जैसा रूप धारण करते हैं, तब वैसी लीला भी करते ही हैं ! फिर केवल मनुष्य जैसी लीलाके कारण अज-अकर्ता भगवान्के जन्म-कर्मकी दिव्यतामें शंका करनेका कोई औचित्य रह नहीं जाता है. यह कथा अलग है कि ऐसी लीलाका हेतु या प्रयोजन सभीको अपने-अपने अधिकारके अनुरूप अलग-अलग समझमें आता हो [अ]किसीको, जिस कुलमें भगवान् प्रकटे उसकी कीर्ति बढ़ानेको प्रकट होते हैं, ऐसा लगता है. किसीको [आ]लोककल्याण और असुरोंका वध करने भगवान्, स्वयंको मिले किसी तरहके वरदानको प्रमाणित करने भगवान् प्रकट हुवे, ऐसा लगता है. किसीको [इ]ब्रह्माजीके द्वारा की गयी प्रार्थनाके स्वरूप भूमिभार हरनेको भगवान् प्रकट होते हैं, ऐसा लगता है. तो किसीको [ई]अज्ञान कामना और कर्मबन्धन में फंसे जीवोंको भवबन्धनसे मुक्त करने अपने श्रवणीय-कीर्तनीय गुणोंको प्रकट करने भगवान् प्रकट होते हैं, ऐसा लगता है.

भगवान् क्यों प्रकट होते हैं ऐसे प्रश्नके समाधानार्थ दिये जानेवाले ऐसे विभिन्न अभिप्रायोंमें कौनसा अभिप्राय भगवान्को एकान्तिकतया अभिप्रेत है, यह निर्धारित नहीं हो पाता. सभी भगवदभिप्रेत हो सकते हैं और इनसे पृथक् भी कोई अभिप्राय भगवान्का क्यों नहीं हो सकता है !

अतः विचारणीय यहां यही है कि 'निरोध' पदका अर्थ प्रलय माननेपर, उसे दशमस्कन्धमें खोज पाना शक्य नहीं. वह तो बारहवें स्कन्धमें ही निरूपित हुवा है.

इसके अलावा जिन नौ तरहकी लक्षणरूपा लीलाओंके अवगत होनेपर लक्ष्यरूप आश्रयका स्वरूप शुद्धतया समझमें आ सकता हो, उसे उन लीलाओंके वर्णनसे पहले ही बीचमें यहां, दशमस्कन्धमें प्रतिपाद्य मान लेना भी बड़ी असमंजस निरूपणकी रीति लगती है. न केवल इतना अपितु आश्रयस्वरूपका यहां दशमस्कन्धमें निरूपण स्वीकारनेपर अग्रिम दो लीलाओं निरूपण भी निष्प्रयोजन (anti-climax)ही लगने लगेगा. अतएव इन स्कन्धोंके बीच रहा पारस्परिक कार्यकारणभाव भी शिथिल होता सा लगता है. श्रीकृष्णको शुद्ध आश्रय स्वरूप मानना, उचित हो या अनुचित हो, पर वह श्रीकृष्णचरित्र केवल दशमस्कन्धमें ही नहीं प्रत्युत ग्यारहवें स्कन्ध तक अनुवृत्त हुवा है. ऐसी

स्थितिमें ग्यारहवें स्कन्धमें आश्रयके स्वरूपका प्रतिपादन क्यों मान्य नहीं रखा जाता ?

एतावता यह सिद्ध होता है कि इस स्कन्धमें प्रतिपाद्य भगवल्लीला निरोधरूपा ही है. वह भक्तिलीलाके प्रतिपादक नवमस्कन्धके बाद ऐसे भक्तोंकी माहात्म्यज्ञानपूर्वक प्रकट होनेवाली ऐसी प्रेमलक्षणा भक्ति है कि जिसमें ऐसी दिव्य एकतानता प्रकट होती है कि भक्तको भगवान्‌के अलावा अन्य सभी सांसारिक विषयोंका आकर्षण निःशेष हो जाता है ! अतः भक्ति और/अथवा मुक्ति या स्वरूपभावापत्ति प्रदान करनेकी लीलायें तो भगवान् दिव्यधामोंमें बिराजमान रहते हुवे भी कर सकते हैं. निरोधलीला, परन्तु, भगवान्‌के भूतलपर प्रकट हुवे बिना शक्य नहीं. अतएव तत्त्वार्थदीपनिबन्धके प्रारम्भमें श्रीकृष्णके स्वरूपकी परिभाषाके रूपमें महाप्रभु यों दिखलाते हैं ‘‘**सएव परमकाष्ठापन्नः कदाचिद् जगदुद्धारार्थं पूर्णएव प्रादुर्भूतः ‘कृष्णः’ इति उच्यते**’’ (त.दी.नि.१।१).

अब रही हरिलीलाकारद्वारा उत्प्रेक्षित भूभारहरणकी बात. तो वह तो दशमस्कन्धके प्रारम्भ भाग और अन्तिम भाग में तो वर्णित हुयी नहीं है. और मुक्तिप्रतिपादक ग्यारहवें स्कन्धमें भी, अन्य स्कन्धोंमें वर्णित अनेकानेक अवतारलीलाओंके सामान्य वर्णनोंकी तरह ही, वह तो यहां भी अनुवृत्त हुयी है. अतः उसे यहां प्रमुखतया प्रतिपाद्य कैसे माना जा सकता है ? अतः निरोधलीलाका जो लक्षण ह्नह्न ‘‘**‘निरोध’का अर्थ इस आत्माका अपनी शक्तिओंके साथ अनुशयन है**’’ (भाग.पुरा.२।१०।५) इन शब्दोंमें दिया गया है वह भूभारहरणकी लीलाके साथ संगत भी नहीं हो पाता है. अतः उसे अकारण यहां लानेपर लीला भी नौके बजाय अधिक सिद्ध होंगी. पुनः भूभारहरणार्थ भगवान्‌का जन्मग्रहण प्रथमस्कन्धमें वर्णित कुन्तीके द्वारा की गयी स्तुतिसे भी विपरीत लगता है. नवमस्कन्धमें ईशके अनुगामिजन भक्तोंकी कथाके बाद भूभारहरणकी कथाकी पूर्वोत्तरसंगति भी बैठती नहीं है.

अतः यहां इस स्कन्धमें भगवान् श्रीकृष्णने भूतलपर अवतीर्ण हो कर जिन भक्तोंके साथ अपनी दुर्विभाव्य शक्तिओंके साथ ऐसी लीला प्रकट की के वे सभी भक्त प्रापंचिक विषयोंको भूल कर भगवान्‌में अनन्यासक्त हो जाते हैं, ऐसा अभिप्रेतार्थ लेना उचित है. अतः ऐसी भक्तिके कारण भक्त मुक्त हो पाते हैं और अन्तमें भगवान् उन्हें अपने सच्चिदानन्दात्मक स्वरूपसे सम्पन्न बना कर स्वरूप या आश्रय भावापन्न भी कर देते हैं. ऐसा क्रम अंगीकार करनेपर नवम दशम एकादश और द्वादश स्कन्धोंका यथोपदिष्ट अर्थमें पूर्वोत्तरभाव निभ पाता है. अतएव व्रज मथुरा और द्वारका आदि लीलास्थलोंके सभी भक्तोंके बारेमें भगवल्लीलाकी चरमनिष्पत्ति (climax) यही दिखलाया गया है कि वे कैसे प्रपंचके विषयों सम्बन्धों और कर्तव्यों को भूल कर सर्वथा भगवदासक्त हो गये :

‘‘**शृण्वन् गृणन् संस्मरयन् च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मंगलानि ते क्रियासु यः त्वच्चरणारविन्दयोः आविष्टचेता न भवाय कल्पते... न ते भवस्य ईश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे... युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन च असकृत् चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्‌गतिं पराम्**’’ (जन्मप्रक.१०।२।३७-३९,३।४५).

‘‘**इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा कुर्वन्तो रममाणाः च न अविन्दन् भववेदनां एवं विहारैः**

कौमारैः कौमारं जहतुः व्रजे’’ (ताम.प्रमा.१०।११।५८–५९)

‘‘**एवंविधाः भगवतो या वृन्दावनचारिणः वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडाः तन्मयतां ययुः’’** (ताम.प्रमे.१०।२१।२०).

‘‘**गोपीनां परमानन्दः आसीद् गोविन्ददर्शने क्षणं युगशतमिव यासां येन विना अभवत्’’**(ताम.साध.१०।१९।१६).

‘‘**तन्मनस्काः तदालापाः तद्विचेष्टाः तदात्मिकाः तद्गुणानेव गायन्त्यो न आत्मागाराणि सस्मरुः’’,‘‘एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीलानुगायतीः रेमिरे अहःसु तच्चित्ताः तन्मनस्काः महोदयाः’’** (ताम.फल.१०।३०।४४, १०।३५।२६).

‘‘**ताभिः स्वलंकृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ प्रणताय प्रपन्नाय ददतुः वरदौ वरान् सोऽपि वव्रे अचलां भक्तिं तस्मिन्नेव अखिलात्मनि तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु दयां पराम्, इति तस्मै वरं दत्त्वा’’** (राज.प्रमा.१०।४१।५१–५२).

‘‘**दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमै श्रेयोभिः विविधैः च अन्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते. भगवति उत्तमश्लोके भवतीभिः अनुत्तमा भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा. दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च हित्वा अवृणीत यूयं यत् ‘कृष्णा’ख्यं पुरुषं परं’’,‘‘मनसो वृत्तयो न स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः वाचो अभिधायिनी नाम्नां कायः तत्प्रह्वणादिषु कर्मभिः भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापि ईश्वरेच्छया मंगलाचरितैः दानैः रतिः नः कृष्णे ईश्वरे’’**(राज.प्रमे.१०।४७।२४–६७).

‘‘**विमोहितो अयं जनः ईश मायया त्वदीयया त्वां भजति अनर्थदृक् सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित् पुरुषः च वञ्चितः’’,‘‘न धीः मय्येकभक्तानाम् आशीभिः भिद्यते क्वचिद् युञ्जानानाम् अभक्तानां प्राणायामादिभिः मनः अक्षीणवासनं... दृश्यते पुनः उत्थितम्’’** (राज.साध.१०।५१।४६–६०,६१).

‘‘**त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वांछया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नं... का अन्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्धम् आघ्राय सन्मुखरितं जनता अपवर्गम्’’** (राज.फल.१०।६०।३८–४२).

‘‘**एवं मनुष्यपदवीम् अनुवर्तमानो नारायणो अखिलभवाय गृहीतशक्तिः रेमे... यानि इह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माणि अनन्यविषयाणि हरिः चकार यस्तु अंग गायति शृणोति अनुमोदते वा भक्तिः भवेद् भगवति हि अपवर्गमार्गे’’** (सात्त्वि.प्रमे.१०।६९।४४–४५).

‘‘**भवन्त एतद् विज्ञाय देहादि उत्पाद्यमन्तवद् मां यजन्तो अध्वरैः युक्ताः प्रजाधर्मेण रक्षथ ! सन्तन्वन्तः प्रजातन्तून् सुखं दुःखं भवाभवौ प्राप्तं–प्राप्तं च सेवन्तो मच्चित्ताः विचरिष्यतः. उदासीनाः देहादौ आत्मारामाः धृतवृताः मयि आवेश्य मनः सम्यङ् माम् अन्ते ब्रह्म यास्यथ’’** (सात्त्वि.साध.१०।७३।२१–२३).

‘‘**आहुः च ते, नलिननाभ!, पदारविन्दं योगेश्वरैः हृदि विचिन्त्यम् अगाधबोधैः संसारकूप–पतितोत्तरणावलम्बं गेहञ्जुषाबमपि मनसि उदियात् सदा नः... न वयं, साध्वि !, साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमपि उत वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदं कामयामहे एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः... मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः’’** (सात्त्वि.फल.१०।८२।४९–८३।४२–४३).

‘‘**शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु न विदुः सन्तम् आत्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः... इत्थं परस्य**

निजवर्त्म-रिरक्षया आत्तलीलातनोः तदनुरूपविडम्बनानि कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयाद् अमुष्य पदयोः अनुवृत्तिम् इच्छन्''(गुण.प्रक.१०।९०।४६-४९).

(प्रकरणार्थ)

इस दशमस्कन्धके पांच प्रमुख प्रकरण यों हैं : [१]जन्मप्रकरण [२]तामसप्रकरण [३]राजसप्रकरण [४]सात्त्विकप्रकरण और [५]गुणप्रकरण. इसी तरह इन पांच प्रकरणोंके अन्तर्गत [य]प्रमाणप्रकरण [र]प्रमेयप्रकरण [ल]साधनप्रकरण और [व]फलप्रकरण यों चार-चार अवान्तरप्रकरणोंमें उपलब्ध होते साधनादिनिरोधरूप भगवत्स्वरूप और भगवल्लीला के प्रभावरूपेण फलनिरोधरूप प्रभावोंका ही निरूपण किया गया है.

इनमें तथ्य यह उभर कर सम्मुख आता है कि अधर्मग्लानिवारण धर्मसंस्थापन साधुत्राण और असाधुनिराकरण जैसे प्रयोजन तत्तद् लीलाओंमें निरन्तर निरूपित होनेके बावजूद पूर्णावतारलीलाके प्रमुख प्रयोजनतया मान्य नहीं हो सकते. क्योंकि नवम-दशमस्कन्धोंके पूर्वोत्तरभावकी संगतिके अभिप्रेतार्थतया उनका बोध नहीं होता है. फिरभी भगवद्भक्त भी क्योंकि जनमें तो जगत्में ही होते हैं अतः ऐसे जगत् या विष्णुपत्नीरूपा पृथ्वी की भी कुछ पीड़ा तो हो ही सकती है. भगवान् उस पीड़ाके निवारणार्थ भी अवतीर्ण होते हैं. जबकि पुष्टिभक्तोंके बारेमें तो स्वयं भागवतपुराण ही यों कहना चाहता है :
''अस्मिन् लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थो अनघः शुचिः ज्ञानं विशुद्धम् आप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया. स्वर्गिणोऽपि एतम् इच्छन्ति लोकं निरयिणः तथा साधकं ज्ञानभक्तिभ्याम् उभयं तद् असाधकम्. न नरः स्वर्गतिं कांक्षेद् नारकीं वा विचक्षणः न इमं लोकं च कांक्षेत देहावेशात् प्रमाद्यति'',''नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः''.
(भाग.पुरा.११।२०।११-१३, ६।१७।२८).

यहां स्वधर्मनिरतका निष्पाप और शुद्ध होना, उसका भगवत्प्रदत्त बीजभाववश या यदृच्छया ज्ञानवान् अथवा भगवद्भक्त हो पाना ऐसा क्रम साधनावस्थाके निरूपणार्थ दरसाया गया है. पुनः ऐसे विशुद्धज्ञान या भगवद्भक्ति के वश ऐहिक विषयाकर्षण या पारलौकिक नरकको भीतिसे अथवा स्वर्गकी लालसासे रहित होनेमें देहावेशप्रयुक्त प्रमाद या देहावेशरहित अप्रमाद को कारण माना गया है. जहां तक सिद्ध भक्तोंका सवाल है तो उन्हें तो स्वर्ग अपवर्ग और नरक सर्वत्र तुल्यदर्शी माना गया है. अतएव भक्तात्माकी पीड़ाके निवारणार्थ भगवदुक्त या भागवतोक्त अवतारके चतुर्विध प्रयोजन तो वस्तुतः लीलार्थ अंगीकृत प्रयोजन ही हैं. वस्तुमात्रमें उपादानतया अन्तर्यामितया एवं परमानन्दात्मिका निजलीलामें विहार करनेवाले परब्रह्म परमात्मा भगवान्का अपने आन्तरिक या बाह्य अनुभवोंमें गोचर न होना ही अभगवद्भक्त्यर्ह जीवात्माकी अव्यक्त पीड़ा है. प्रारम्भमें वह पीड़ा स्वयं भी मनोगोचर नहीं होती परन्तु स्वयं भागवतपुराणके अनुसार ह्नह्न

[क]**''सतां प्रसंगाद् मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायानाः कथाः तज्जोषणाद् आशु अपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिः भक्तिः अनुक्रमिष्यति, भक्त्या पुमान् जातविरागः ऐन्द्रियाद् दृष्टश्रुताद् मद्रचनानुचिन्तया चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो यतिष्यते ऋजुभिः योगमार्गैः. असेवया अयं प्रकृतेः गुणानां ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन योगेन मयि अर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानम् इह अवरुन्धे''** (३।२५।२५-२७).
[ख]**''भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिः अन्यत्र च एषः त्रिकः एककालः प्रपद्यमानस्य यथा अश्नतः स्युः पुष्टिः तुष्टिः क्षुदपायो अनुघासम्''** (भाग.पुरा.११।२।४२).
[ग]**''नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिः भगवतो, नृप !, अव्ययस्य अप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः, कामं क्रोधं भयं स्नेहम् ऐक्यं सौहृदमेव वा नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते. नच एवं विस्मयः कार्यो भवता भगवति अजे योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यतः एतद् विमुच्यते''** (भाग.पुरा.१०।२९।१४-१६).

[क]वचनमें अवतारकाल या अनवतारकाल में प्रमाण-साधनमर्यादाके अनुरोधवश ''वैराग्यविजृम्भितेन योगेन मयि अर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानम् इह अवरुन्धे'' वचनांशद्वारा निरोधपथकी ओर अग्रसर होनेकी सरणी दरसायी गयी है. [ख]वचनमें अनवतारकालमें निःसाधन जीवात्मओंके वास्ते निरोधपथपर अग्रसर होनेकी सरणी दरसायी गयी है. [ग]वचनमें अवतारकालमें ''यान्ति तन्मयतां हि ते'' वचनांशद्वारा निरोधपथपर अग्रसर होनेकी लीलापद्धति दरसायी गयी है. निरोधलीलौपयिक प्रमुख अन्तर केवल यही है कि प्रमाण और साधन की मर्यादाके वश सर्वथा निन्दार्ह दोषरूप माने जाते मनोविकार काम-क्रोध-भय-द्वेष-स्नेह-सौहृदादि कथञ्चित् प्रकट भगवत्स्वरूपविषयक हों तो निरोधपथकी ओर ले जानेवाले बन सकते हैं परन्तु जागतिक विषयक हों तो नहीं !

अतएव स्कन्धार्थरूप निरोधका कारणलक्षण भूमिपर भगवान्का भक्तोंके बीच प्राकट्य माना गया है. इसी तरह कार्यलक्षण ऐसे इन भक्तोंका प्रापंचिक विषयोंके विस्मरणपूर्वक अनन्यभगवदासक्त हो जाना माना गया है. उसी निरोधलीलाको प्रकट करने जन्मप्रकरणमें भगवज्जन्म प्रमुख प्रतिपाद्य विषय माना गया है. तामस राजस और सात्त्विक प्रकरणोंकी त्रयीमें उसी निरोधके तामस राजस एवं सात्त्विक भक्तोंके भावोंके अनुरूप भगवल्लीलाओंके कारण तामसादि भक्तोंका अपने लौकिक वैदिक कर्तव्यों तथा अहन्ता-ममतास्पद प्रापंचिक विषयोंके आकर्षणसे मुक्त हो कर अनन्यभगवदासक्त हो जाना, भगवल्लीलाके कार्यतया प्रतिपादित हुवा है.

श्रीघनश्याम भट्ट प्रस्तुत प्रकरणार्थका संकलन यों करते हैं : प्रपंचविस्मृतिपूर्विका भगवदासक्तिको निरोधरूपा माना गया होनेसे निरोधलीलाके प्रकटनार्थ सबसे भगवत्प्राकट्य वर्णित हुवा है. इसमें प्रथम जन्मप्रकरण है. इस जन्मप्रकरणके अन्तर्गत चार अध्याय भगवान् चतुर्मूर्ति बन कर प्रकट हुवे हैं यह दरसानेको है. यों चतुर्मूर्ति भगवान्के वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध चार व्यूह होते हैं.

(जन्मप्रकरणान्तर्गत चार अध्यायोंका प्रतिपाद्य अर्थ)

अतएव निरोधलीलाके उपक्रमतया अपनी दुर्विभाव्य शक्तिओंके समुदायके साथ प्रकट होनेवाले भगवान्‌की भूतलपर जन्मग्रहणकी लीला प्रथमके चार अध्यायोंद्वारा प्रतिपादित हुयी है.

देश-काल-स्वरूपके परिच्छेद(सीमा)से रहित भगवान्‌का भूतलके देशविशेषमें कालविशेषमें तथा उन-उन विशेष भक्तोंके भावोंके अनुरूप अपना विशेष स्वरूप प्रकट करना, इस प्रसंगमें साधननिरोधरूपा लीलाकथा बन जाती है. भक्तोंका अपने प्रापंचिक संबन्ध विषय और क्रियाकलापों को भूल कर ऐसे भगवान्‌में अनन्यासक्त हो जाना फलनिरोधरूपा लीलाकथा मानी गयी है.

प्रत्येक साधनका साधन होना उसके किसी तरहके क्रियाकलाप या अवान्तरव्यापार में अन्वित होनेपर प्रकट होता है. अतः दशमस्कन्धके, नामशः, जन्म तामस राजस सात्त्विक और गुण, यों पांचों प्रकरणोंमें प्रतिपादित विविध भगवल्लीलायें भक्तोंके बीच भूतलपर प्रकट होनेकी साधनरूपा भगवल्लीलाके अवान्तरव्यापारोंकी लीलाकथा मानी जाती हैं.

प्रथमाध्यायार्थ हेतुता :

(१)निरोधलीलाके अन्तर्गत जन्मप्रकरणके ६९ श्लोकोंवाले इस प्रथम अध्यायमें भूमि, माता देवकी; तथा, अन्य भी भक्तजनोंको सतानेवाले भयरूप कष्ट या दुःख जो थे उनका निरूपण, दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीहरिके, जन्मके हेतुतया किया गया है. यह भयरूप दुःख भूमिको प्रत्यासन्न कलिकालके कारण था. माता देवकीको कंसके क्रूर संकल्प और स्वभाव के कारण था. तथा अन्य भी साधारण जनोंको अज्ञानजन्य अथवा कंसकी मूर्खताके कारण भयरूप दुःख था. अतः अपनी परमानन्ददायिका लीलाद्वारा त्रिविध दुःखको हरनेवाले भगवान्‌का वासुदेव व्यूहके साथ प्रकट होनेमें त्रिविध दुःखोंको हेतुके रूपमें दिखलाया जाना स्वाभाविक है. और यही हेतुता इस प्रथमाध्यायका प्रतिपाद्य अर्थ है. इसके अलावा, श्रीशुकदेवजी द्वारा श्रीकृष्णावतारकथाका वर्णन महाराज परीक्षितद्वारा यदुकुलमें जन्म लेनेवाले भगवान्‌की अवतारलीलाके बारे जिज्ञासा प्रकट करनेके कारण भी प्रसक्त हुवा होनेसे अवतारहेतु यहां चतुर्धा निरूपित हुवे हैं. माता देवकीजीको मृत्युसे बचा पानेका श्रीवसुदेवजीका सामर्थ्य और उनके हृदयमें भगवान्‌के वासुदेवतया प्रकट होना ये प्रथमाध्यायमें वर्ण्य-विषय हैं.

भगवल्लीलागानमें तत्पर बनानेको सूरदासजी और परमानन्ददासजी को जो सुनायी गयी थी ‘दशमानुक्रमणिका’ उसमें इस प्रथमाध्यायकी अनुक्रमणिकामें इतने विषय गिनाये गये हैं : [१]महाराजा परीक्षितद्वारा यदुकुलमें प्रकट होनेवाले भगवान् वासुदेवकी कथा सुननेका मनोरथ श्रीशुकदेवजीके सम्मुख प्रस्तुत करना, [२]जन्मके बाद अपने माता-पितासे दूर नन्द-यशोदाके पास भगवान्‌के लालन-पालनकी लीलाके हेतुकी जिज्ञासा, [३]भूमिको दी गयी सान्त्वना, [४]श्रीवसुदेवजीद्वारा मायाद्वारा और श्रीनारदजीद्वारा कंसका प्रबोधन, [५]देवकीजीके छह पुत्रोंका वध; और, [६]साधारण जनताके भीतर

कंसका भय.

द्वितीयाध्यायार्थ उद्यम :

(२) निरोधलीलाके अन्तर्गत जन्मप्रकरणके ४२ श्लोकोंवाले द्वितीयाध्यायमें संकर्षणव्यूह और योगमाया रूपी लीलाविहारके अंगभूत उन-उन आधिदैविक सामर्थ्योंको पहले प्रकट कर बादमें स्वयं भगवान्‌के प्रकट होनेकी योजनाके वृत्तान्तका निरूपण अभिप्रेत है. सभी देवताओंद्वारा की गयी भगवत्स्तुतिके कारण पूर्वाध्यायमें वर्णित भयहेतुओंके निवारणार्थ उद्यम इस द्वितीयाध्यायका प्रमुख प्रतिपाद्य अर्थ है. तदर्थ माता देवकीजीके गर्भसे श्रीबलरामके गर्भान्तरारोपणकी कथा तथा श्रीबलरामके दैत्यविघातक शेष तथा संकर्षणव्यूह रूपी होनेके कारण पूर्वप्राकट्यकी कथाका निरूपण भी किया गया है.

उक्त दशमानुक्रमणिकाकी व्याख्यामें ग्रन्थकर्ता प्रस्तुत अध्यायके विषयोंको यों गिनाते हैं : [१]भगवान्‌की दिव्यसामर्थ्यरूपा योगमायाके विपरीतगुणोंका वर्णन, [२]ऐसी अपनी दिव्यशक्तिरूपा योगमायाको प्रकट होनेकी आज्ञा, [३]उस योगमायाका कार्य, [४]उसका परिणाम, [५]देव आदिद्वारा भगवान्‌की स्तुति, [६]भगवान्‌के श्रीवसुदेवजीके हृदयमें आविष्ट होना, [७]वहांसे माता देवकीजीमें, [८]कंसका विचार, [९]ब्रह्मा आदिका आगमन [१०]भगवत्स्तुति, [११]देवताओं द्वारा माता देवकीजीको अभिनन्दन-आश्वासन प्रदान करनेके रूपमें की गयी उनकी स्तुति और [१२]देवताओंका पुनर्गमन.

तृतीयाध्यायार्थ रूपान्तरस्वीकरण :

(३)निरोधलीलाके अन्तर्गत जन्मप्रकरणके ५३ श्लोकोंवाले तृतीयाध्यायमें रूपान्तर स्वीकार अध्यायार्थतया अभिप्रेत है. [१]आनेवाले कलियुगरूपी लौकिक कालमें सर्वगुणोपेत मूलकालका प्रादुर्भाव, [२]अवतीर्ण भगवान्‌के मूलरूपका निरूपण, [३]पिता वसुदेव तथा माता देवकी द्वारा की गयी स्तुतिओंके अनुसार; तथा, स्वयं भगवान्‌ने जो अपने मूलस्वरूपके बारेमें खुलासा दिया उसके अनुसार भी भगवान्‌का मूलस्वरूप [४]साथ ही साथ माता देवकी द्वारा उस रूपके संगोपनकी प्रार्थनाके कारण जो भगवान्‌ने अपना शिशुरूप प्रकट किया, यों चार प्रकारसे रूपान्तरस्वीकरण इस अध्यायमें वर्णित हुवा है. भगवान्‌का यही रूप वंशसम्बन्धी होनेके कारण यहां प्रद्युम्नव्यूहका प्राकट्य द्योतित हुवा है.

'दशमानुक्रमणिका' ग्रन्थमें इस तृतीयाध्यायकी अनुक्रमणिकामें इतने विषय गिनाये गये हैं : [१]श्रीकृष्णप्रादुर्भावका वर्णन, [२]समुद्भुत श्रीकृष्णके स्वरूपका वर्णन, [३]पिता वसुदेवजी द्वारा की गयी स्तुति, [४]माता देवकी आदिके पूर्वजन्मगत स्वरूपका ज्ञापन भगवान्‌द्वारा, [५]पिता वसुदेवजी द्वारा भगवान्‌को नन्दगोकुलमें पधरा जाना.

चतुर्थाध्यायार्थ मायानाट्य :

(४)निरोधलीलाके अन्तर्गत जन्मप्रकरणके ४६ श्लोकोंवाले चतुर्थाध्यायमें भगवान्‌की शक्तिरूपा योगमायाका नाट्य प्रमुखतया प्रतिपाद्य विषय है. [१]माता देवकीद्वारा पुत्रजन्मके तथ्यका उपगूहन, रोदन

कन्याको जीवित रहने देनेकी कंसके समक्ष याचनाके कारण अन्यकी कन्या होनेके तथ्यका उपगूहन ये मायाकार्य है. [२]स्वयं माया द्वारा भी कंसको श्रीकृष्णका जन्म किसके पुत्रतया कहां कब कैसे हुवा, इस बारेमें कोई स्पष्ट बात बतानेके बजाय भरमानेवाले शब्दोंमें उकसाना भी मायाका ही नाटन है. [३]कंसकी ओर अतीव भय रहनेके बावजूद श्रीवसुदेवजी मथुरामें ही बसे रह कर कंसकी वंचना मायाका नाटन है, [४]कंसको स्वयं खुदके कर्मविपाकवश वधार्ह बनानेको ब्रह्महिंसामें अपना हित समझमें आना बुद्धिप्रेरक भगवान्का भी मायानाटन है. इस चार प्रकारके कपट या मायानाटन की किसीके मनमें भनक भी पैदा न होनी कि कोई उसे रोक पाये या मायाके परदाको उठा कर सत्यका अनावृत देख पाये यह भगवान्की निरोधलीलाको भलीभांति घटित होने देनेमें भगवान्की अनिरुद्धव्यूहरूपा सामर्थ्य है. और उसीका जन्म इस चतुर्थ अध्यायका प्रमुख विषय है.

'दशमानुक्रमणिका' ग्रन्थमें इस चतुर्थाध्यायकी अनुक्रमणिकामें इतने विषय गिनाये गये हैं : [१]श्रीकृष्णकी अनुजा कन्याके रूपमें प्रकट होनेवाली योगमायाके मारणप्रयासकी कथा, [२]उस कन्यारूपा योगमायाका कंसको उकसाना, [३]योगमायाके वचन सुन कर कंसको आकस्मिक पश्चात्ताप तथा देवकीवसुदेवको सान्त्वनाके वचन कहना दोनोंको कारागृहसे मुक्त करना, [४]कंसके मन्त्रिगणोंकी साधुपुरुषोंको त्रास देनेकी एवं पास-पड़ौसके प्रदेशोंमें सद्योजात बालकोंके वध करवा देनेकी सलाह.

आज तो आनन्द आनन्द !
पूरण ब्रह्म सकल घटव्यापी सो आयो गृहनन्द ।।१।।
गरग पराशर अरु मुनि नारद पढ़त वेद श्रुति छन्द ।
हरिजीवनप्रभु गोकुल प्रकटे मिटे सकल दुखद्वन्द्व ।।२।।